IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भारतीय सांस्कृतिक संगीत परम्परा में वर्णित नादसाधना का साधनात्मक विवेचन

Bhaarateey Saanskrtik Sangeet Parampara mein Varnit Naadasaadhana ka Saadhanaatmak Vivechan

Dr. Tekeshwar Bisen
डॉ0 टेकेश्वर बिसेन
सहायक प्राध्यापक
भारतीय शास्त्रीय संगीत विभाग
देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार
tekeshwar1255@gmail.com

सारांश

मानव शरीर को प्रयोगशाला का आधार मानकर ऋषियों द्वारा प्रणीत योग विद्या भारत वर्ष की एक अमूल्य सम्पत्ति है। योग साधना वस्तुतः समस्त मोक्ष–साधनाओं में से सर्वोत्तम तथा श्रेष्ठतम साधना पद्धति है। योग विद्याा को विश्व–मानव के कल्याण हेतु सार्वभौम धर्म कहा गया है। यह यथार्थ सत्य है कि योग कोई नवीन खोजों का परिणाम नहीं है वह प्राचीन से प्राचीनतम् गुप्त विद्या है जिसका ज्ञान समय के साथ विभिन्न कारणों से जनसाधारण की पहुँच से दूर होता गया। आधुनिक समय में ऐसे ही विद्या के विस्तार की आवश्यकता है जो मनुष्य के अन्तःकरण के साथ–साथ उसके सम्पूर्णतम् विकास की सम्भावनाओं को पूर्ण कर सके। अतः विज्ञान ने जिन सत्यों को जाना और माना है, उसे आज से हजारों वर्ष पूर्व भारतीय योगियों ने जान लिया था। योगीजन सिद्धि प्राप्ति के लिए अपार कष्टों को सहकर अनेक कठोर साधनाएँ करते थे और जगत के सभी सुखों का परित्याग करते हुए अनाहत नाद में लीन हो जाते थे। योग साधना में नाद की इस परम महत्ता को देखते हुए योग सिद्धान्त का संगीतशास्त्र के साथ गहरा सम्बन्ध है, परन्तु दोनों में एक स्थूल अन्तर अवश्य है और वह यह है कि योग में केवल अनाहत नाद की उपासना होती है और संगीत में केवल आहत नाद का प्रयोग होता है। योग साधना का मुख्य उद्देश्य आन्तरिक शक्ति को जागृत करके उसे उर्ध्वमुखी बनाना है।

कूट शब्द– योग, नाद, साधना, सिद्धि ,संगीत।

परिचय –

भारतीय संस्कृति में योग और नाद दोनों की अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। योग जहाँ शरीर, मन और आत्मा के समन्वय का माध्यम है, वहीं नाद संगीत का मूल स्रोत माना जाता है। 'नाद' शब्द का तात्पर्य है ध्वनि या कंपन, जो ब्रह्मांड की मूल चेतना का प्रतीक है। भारतीय दर्शन में यह विश्वास किया जाता है कि सम्पूर्ण सृष्टि की उत्पत्ति 'नाद' से हुई है, जिसे 'नादब्रह्म' भी कहा गया है।

योग और संगीत, विशेषतः नादयोग, आत्मिक उन्नति और मानसिक शांति के लिए प्रभावशाली माध्यम रहे हैं। नादयोग, योग की वह शाखा है जिसमें ध्वनि के माध्यम से चेतना का विस्तार किया जाता है। संगीत और नाद के माध्यम से ध्यान की गहराइयों तक पहुँचना संभव होता है, जो योग की अंतिम अवस्था समाधि की ओर मार्गदर्शन करता है। इस अध्ययन में हम यह विवेचना करेंगे कि किस प्रकार योग और नाद परस्पर संबंधित हैं, तथा भारतीय संगीत में नाद के विभिन्न रूपों का क्या महत्व है। साथ ही यह भी देखा जाएगा कि किस प्रकार संगीत और नाद के माध्यम से योग साधना को सशक्त किया जा सकता है।

योग– लोक व्यवहार में साधरणतया दो पृथक वस्तुओं के संयोग को ही 'योग' कहते हैं। जैसे रवि–चन्द्र का योग! अभावपूर्ति होना भी योग है, जैसे 'धनयोग' यहाँ भी संयोग के अर्थ में ही योग शब्द आया है। साधारण बोलचाल में तथा शास्त्रीय भाषा में भी 'योग' शब्द का अर्थ मूल ही है। गणित शास्त्र में 'योग' का अर्थ 'जोड़ना' प्रसिद्ध है, किन्तु पारिभाषिक भाषा में 'योग' शब्द का उस द"र्शनशास्त्र के लिए रूढ़ हो गया है, जिसका व्यष्टि चेतन का समष्टिचेतन के साथ सम्बन्ध स्थापित करना है। 'योग' वह शक्ति है, जिसके प्रभाव से यह जीवात्मा उस परमात्मा के साथ युक्त होता है।

हिरण्गर्भो योगस्य वित्काः नाडन्यः पुरातनः।

योगीश्वर याज्ञवल्क्य की स्मृति के अनुसार योगविद्या के आदि आचार्य महर्षि हिरदण्गर्भ हैं।[1]

योगो हि बहुधा ब्रह्मन् भिद्यते व्यवहारतः।
मन्योगो लयश्चैव हठोऽसौ राजयोगकः।।

किन्तु आज तो हमें महर्षि पतंजलि का प्रमाणिक शास्त्रीय ग्रन्थ 'योगसूत्र' ही उपलब्ध है। इस ग्रन्थ में योगविद्याा का सूत्रों के माध्यम से दिग्दर्शन मात्र कराया गया है। योग के चार विभाग – मंत्रयोग, लययोग, हठयोग तथा राजयोग के नाम से उपनिषदों में भी उपलब्ध होते हैं। लोक जीवन में हठयोग ही योग के नाम से रूढ़ है। अतः 'राजयोग' की आधारभूमि तथा मंत्र और लययोग के विलयस्थानरूप 'हठयोग' को ही सामग्री के रूप में ग्रहण किया गया है 'राजयोग' का प्रारम्भ मन से और 'हठयोग' का सीधा सम्बन्ध शरीर से है। भारतीय हठयोगी तथा संगीतकार दोनों ने ही जिसे अपने प्रयोग का क्षेत्र चुना वह 'नरशरीर' ही था। जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का लघु रूप है। वही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का साधन है। जन्म–जन्मान्तरों के संचित–संस्कारों के भोग का उपाय भी एक मात्र वही 'नरदेह' ही है। उसी देह को साधने की भूमिका बनाकर उसमें (अचेतन–शरीर) 'चेतन' की स्थिति कहाँ और कैसे है। उसकी खोज करते हुए स्वानुभूतियों के आधार पर जिन अपूर्व तथ्यों को पाया, उन्हें ही इन योगियों ने सामाजिक जीवन के पोषण तथा उन्नति के हेतु दे दिया। उन उपलब्धियों में से 'नाद तथा संगीत' महत्त्वपूर्ण है।

विधेतु देह–प्रसादयन्ति धीमन्तो भुक्ति–मुक्तिनुपायत।

अपने सुदीर्घ आध्यात्मिक अनुभवों से इन योगियों ने 'नादतत्व' की शक्ति तथा उसके स्वरूप का सूक्ष्मतिसूक्ष्म और विशद विवेचन किया। किसी भी पदार्थ का पूर्ण ज्ञान प्रत्यक्षदर्शन से बढ़कर अन्य किसी साधन से नहीं हो सकता। प्रयोगात्मक होने से 'योग' ही एक ऐसा साधन है, जिसके द्वारा 'चक्रभेदन' और कुण्डलिनी जागरण की प्रक्रियाओं के मध्य साधक योगी ने शब्द, ध्वनि तथा स्फोट के सूक्ष्मभेदक तत्त्व को आकार–प्रकार, वर्ण, रूप–रंग के साथ देखा है तभी उसे (शब्द को) एक नई संज्ञा 'नाद' प्रदान की है।

प्रकाश से भी अधिक उपयुक्त पथ–प्रश"र्क अप्रतिहल गतिमान नाद तत्व है। नादबिन्दूपनिषद में मन को संयमित करने की अपूर्व शक्ति का नाद में होना बताया गया है। साथ ही यह भी उल्लेख किया गया है कि नाद में आसक्त हुआ चित्त नाद के अतिरिक्त किसी विषय को नहीं चाहता। अर्थात् नादपाश से बंधा हुआ चित्त चांचल्यरहित होकर बाहरी विषयों को भूलकर स्तब्ध हो जाता है।

नाद–योगशिखोपनिषद् में नाद के स्वरूप तथा उत्पत्ति का विवरण बड़ी सुन्दरता के साथ किया गया है। परब्रह्म की इच्छा" शक्ति ही नादब्रह्म है। उसे अविनाशी '"ाब्द ब्रह्म' कहते हैं। मूलाधार में स्थित नाद की आधारभूत अव्यक्त शक्ति 'बिन्दु' रूप है। उससे 'नाद' उत्पन्न होता है। उसी को 'पश्यन्ती' के रूप में लोग जानते हैं। योगी लोग उसी से समस्त विश्व को देखते हैं। **'नास्ति नादात् परो मन्त्रः'** अर्थात नाद से बढ़कर कोई मन्त्र नहीं है। संगीत रत्नाकर में भी 'प्राणग्रिसंयोग' को नादोत्पत्ति का कारण कहा गया है। 'नाद' अपने श्रव्यरूप के साथ गीत का दृश्य रूप भी है। नाद के लिए गीत आवश्यक है और गति के होते ही प्रकाश उत्पन्न होता है। **ब्रह्मप्रणवसन्धाननादेज्योतिर्मयः शिवः' अथवा 'ज्योतिर्मयः शिवो नादः'** आदि वचनों से उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि होती है।

योगियों ने अनादि प्रवाहरूप इस 'नाद' का उपयोग तीन रूपों में किया है– प्रकाशतत्त्व, गन्तव्यमार्ग, प्रतीकरूप। वैष्णवी मुद्रा में नादानुसन्धान के लिए अन्तर्मुख हुए योगी ने दाहिने कान से जिन नादों को सुना उसे ही नादबिन्दुनिषद् तथा योगशिखोपनिषद् में क्रम से कहा गया है।

प्रारम्भिक अवस्था में वह योगी अनेक प्रकार से महान्, गम्भीर, घन, और तीव्र नाद सुनता है। ज्यों–ज्यों अभ्यास बढ़ता जाता है, त्यों–त्यों वह सूक्ष्म–सूक्ष्मतर नादों को भी सुनने लगता है। इस कथन से यह स्पष्ट है कि योगी ने स्थूलध्वनि से लेकर सूक्ष्म–सूक्ष्मतर ध्वनि तक को क्रमशः सुना है। वस्तुतः सृष्टि की रचना में चेतनाशक्ति का अवतरण हुआ है। उस समय चेतना शक्ति क्रमशः अधिक से अधिक स्थूल के समान और वह विविध, विचित्र तथा अनेक होगी, किन्तु इस प्रक्रिया में उनका आनन्दांश क्रमशः क्षीण होता गया। समुद्रगर्जन और मेघगर्जन में स्वरव्यंजना नहीं है। इसमें केवल एक स्वर की अभिव्यक्ति होती है

मयूर चातक–च्छाग–कौंचकोकिलदर्दुशः।
गजश्च सप्तशड्जादीन् क्रमादुच्चारयत्यमी।।

इस प्रकार अन्य ध्वनियों की अपेक्षा मधुर निर्झर झर्झरध्वनि को सुनने पर तथा उन ध्वनियों के श्रवणक्रम को पढ़ने पर तुरन्त इस तथ्य की ओर ध्यान जाता है कि उप नादो के सुनने में सृष्टि का क्रम विलोम अथवा आरोही है अर्थात सूक्ष्म का क्रमशः स्थूल में अवतरण है। किन्तु उनके दर्शन के समय स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाने से आरोही क्रम रहता है। अवनद्धवाद्य स्थूल महान तथा धन–तीव्र नाद के जनक हैं किन्तु उनमें स्वरवैचित्र्य नहीं है।

इन नादों के अन्तर आसर पर बैठे हुए योगी अभ्यास के मध्य में मर्दल (अवनद्ध) की ध्वनि, उसके बाद घण्टे की टन–टन ध्वनि और तब काहल (सुषिर) की ध्वनि सुनते हैं। इन ध्वनियों के श्रवण में भी स्वर–व्यन्जना की दृष्टि से (जो सांगीतिक ध्वनि का प्राण है) वही स्थूल से सूक्ष्म नादों की ओर जानने वाला क्रम है।

अभ्यास के अन्त में योगी जन जिन नादों को सुनते हैं, वे नाद क्रमशः किंकिवी (धनवाद्य), वंशी (सुषिर), वीणा (तत) तथा भ्रमर की गुंजार हैं। यहाँ पर यह जिज्ञासा हो सकती है कि अन्तिम ध्वनि को जब भ्रमर की गुंजार (नाद) से प्रकट किया है, तब पूर्ववर्ती अन्य सुने हुए नादों को पशु–पक्षियों की बोलियों से ही क्यों नहीं कहा? जबकि संगीत के ग्रन्थों में पशु–पक्षियों की बोलियों में संगीत के सातो स्वरों का उल्लेख प्राप्त होता है। समाधनार्थ कि शरीर के भीतर सुनाई देने वाले नादों में जो रन्जकता, विविधता तथा मधुरता है, उसकी व्यंजना वाद्यों के द्वारा ही सम्भव हो सकती है जो किसी एक पक्षी की बोली में सम्भव नहीं हो सकती। अर्थात् योगियों ने स्वानुभव के बल पर भीतरी नाद को सादृश्य, वाद्यों के माध्यम से प्रकट किया। पशु–पक्षियों के नाद में उनके प्रकाशन की असमर्थता को वे अवश्य जानते होंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि शारीरी वीणा नादानुसन्धान का जो क्रम है वह स्वर–व्यंजना के अवरोही क्रम में है। (तार से मन्द्र की ओर अथवा सूक्ष्म से स्थूल की ओर) गात्रवीणा में ही स्वर प्रथमतः प्रकट हुआ है, तत्पश्चात् वे दारवी वीणा में आए। गात्रवीणा में देवी–देवताओं की स्थिति का उल्लेख योगियों ने किया है। सम्भवत इसी कारण दारवी वीणा के विभिन्न अंगों में देवी और देवताओं की कल्पना की गई है। संगीतरलाकर के वाद्याध्याय में एकतन्त्री वीणा की निर्माण विधि के अनन्तर कहा है। 'प्रकृतिः यथैवीणानामेषा', 'दण्डःशंभुः', 'तन्त्री–उमा', 'ककुभ–कमलापतिः', 'पत्रिका–इन्द्रः', 'तुम्बःब्रह्मा', 'नाभी–सरस्वती', दोरकः वासुकिः, जीवा–सुधांशुः,' 'सारिका–रविः', – **सर्वदेवमयी तस्माद् वीजेयं सर्वमंगला**

इस प्रकार समस्त सर्वदेवमयी समस्त मंगलों को देने वाली यह वीणा है।

नादानुसन्धान से समस्त संचित पापों का क्षय होता है और चित्त तथ प्राणवायु, निरंजन में विलीन हो जाती है। योग में नादानुसंधान का प्रयोजन तो मोक्ष प्राप्ति है। वह एक शक्तिशाली सनातन साधन ही है जो मोक्ष प्राप्ति में सहयोग प्रदान करता है। नाद को योगियों ने दो प्रकार से सुना आहत और अनाहर। श्वासोच्छ्वास की गति में जिस 'नाद' का उन्होंने श्रवण किया वह 'सोऽहं' था। जिसका सम्बन्ध हृदय के स्पन्दन के साथ था। इसीलिए उसे 'अनाहत' नाम दिया। 'सोऽहं' इस अनाहत नाद को योगियो ने अर्थोत्पादक कहा है। 'सः' त्र वह, 'अहम' त्र मैं 'सोऽहम्' त्र वह मैं हूँ। 'सोहं' ध्वनि अव्यक्त रूप से 'आज्ञाचक्र' में मन के द्वारा अनुभूत हुई। उपनिषदों में भी कहा गया है कि जितने नाद हैं उतने जीव हैं। जब तक नाद है तब तक मन है। निःश्वास की गति के साथ होने वाले 'सोऽहं' नाद का नियमन कर योगी दीघार्यु तथा शक्तिमान होते हैं।

संगीत– नाद को ही एकमात्र अपने लक्ष्य (पुरूषार्थ) प्राप्ति का साधन बनाने वाले योगियों के बाद संगीत साधक ही आते हैं। योग की भांति 'संगीत' का भी शरीर से ही सीधा सम्बन्ध है। उससे ही वह प्रारम्भ होता है। नारदीय शिक्षा तथा भरत के नाट्य"ाास्त्र में 'गात्र' (शरीर) वीणा का वर्णन प्राप्त होता है,

शारीर्यामेव वीणायां स्वराः सप्त प्रकीर्तिताः।
तेभ्यो विनिःसृता"चैवमातोद्येशु द्विजोत्तमा।।
पूर्वं भारीरादुद्भूतास्ततो गच्छन्ति दारवीम्।
ततः पुश्करजंचैवमनुयान्तिधंन (ध्वनिं) पुनः (युताः)।।

जिसका तात्पर्य यह है कि 'स्वर' सर्वप्रथम शरीर में ही प्रकट हुए, पश्चात् वीणा, वेणु और अवनद्धवाद्यों में आये। नाट्यशास्त्र कर्त्ता भरत के कथनानुसार 'शरीर' ही संगीत के स्वरों का प्रथम जन्मदाता है। नाट्य"ाास्त्र का ध्वन्यर्थक 'शब्द' 'शब्द' 'वारूवात्मकोभवेच्छब्दः' के द्वारा जो बताया गया है वही आगे चलकर मतंगमुनि के 'बृहदेशी' में 'नाद' हो गया। 'नाद' संज्ञा में जिस विशिष्टता का ज्ञान इन योगियो ने कराया था, उसका पूर्ण लाभ संगीतकारों ने उठाया। मतंगमुनि से 'नाद' शब्द संगीत में एक विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त होने लगा। मंगत के पूर्ववर्ती सभी संगीत ग्रन्थों में 'नाद' की स्तुति तथा महिमा गायी जाने लगी। 'संगीतरत्नाकर' में 'नाद' को 'नादब्रह्म' के साथ–साथ ब्रह्मा–विष्णु तथा महेश के रूप सर्जन, धारण और विलय तीनों शक्तियों की संज्ञा प्रदान की है। लोक–व्यवहार में सम्पूर्णवाणी के तथा नृत्य 'नाद' के अधीन है। मतुगमुनि के बृहदेशो पर योगदर्शन का विशेष प्रभाव रहा है। इसी कारण शास्त्र निरूपण के पूर्व ग्रन्थ के आरमभ में वे नादतत्व की व्याख्या करते हैं। मतंग की बृहतदेशी के साथ–साथ शार्बदेव की संगीतरत्नाकर में भी नादस्थान, नादोत्पत्तिविधि, नादभेद, नादों के नाम तथा श्रुतियों की संख्या बाईस होने का कारण जिस शैली में बताया गया है, वह शैली 'योग' से ही प्रभावित है।

मोक्षप्राप्ति में 'नाद' सहायक है, उससे उपयुक्त पथप्रदर्शक अन्य कोई नहीं है, क्योंकि उसमें 'रूप' और 'श्रव्यता' दोनों ही है। इसीलिए 'संगीतरत्नाकर' में शरंदेव ने कहा है कि 'शाश्बाताय च धर्मायकीर्त्यै निःश्रेयसाप्तये' अर्थात शा"वत धर्म, कीर्ति और मोक्ष तीनों को ध्यान में रखकर ही 'संगीतरत्नाकर' का निर्माण कर रहा हूँ। 'संगीत' की परिभाषा करते हुए **'गीतं वाद्यं तथा नृत्यंच त्रयंसंगीतमुच्येते**' कथन से 'नृत्त' की सार्थकता तथा संगीत के अन्तर्गत तीनों के संगम की पुष्टि, योग की उपलब्धियों के ही माध्यम से ही हो पाती है। इसके अतिरिक्त 'योगशास्त्र' का दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रभाव वणों में लक्षित होता है। संगीतरत्नाकर के नाद, स्थान, श्रुति, जाति, कुल, देवता, ऋषि, छन्द और रस के प्रकरण में ग्रन्थकार ने स्वरों के वर्ण, रंग, जाति की चर्चा की है। यह योग शास्त्र के प्रभाव से सम्भव है। अभिव्यक्ति का एक प्रभावशाली माध्यम रंग है। अतः प्राचीन शिक्षाग्रन्थों में तत्वों और स्वरों के साथ रंगों का वर्णन भी मिलता है। जैसे नारदीय शिक्षा में क्रोध रस पूर्ण रागों का रंग लाल होता है आदि नाद में ज्योतिस्तत्व है, उससे रूप या रंग को प्राप्त किया जा सकता है। ज्ञात स्वरों से जिन सात रंगों को जोड़ा गया है वे ही रंग न्याय शास्त्र में पृथ्वी के भी बताए गए हैं। 'रूप' अग्नि का गुण है, 'अग्नि' नाद के दो उत्पादक तत्वों में से एक है और दूसरा तत्व 'वायु' है। इन संज्ञायों का प्रयोग संगीत ग्रन्थों में कुछ इस प्रकार हुआ है जिसका अर्थ समझने के लिए योग व तन्त्रशास्त्र का सहरा लेना पड़ता है जैसे बिन्दु, कला, मात्रा, काल, प्राण बीजाक्षर आदि शक्ति का प्रतिकात्मक बीजाक्षर ('अ' और 'इ') स्वरों के क्रम 'सा,रे,ग,म,प,ध,नी,सा,' में तांत्रिक प्रभाव को ही व्यक्त करते हैं। 'अ' विष्णु (हरि) का प्रतीक है और 'इ' शक्ति का प्रतीक है। अतः इन्हीं कारणों से संगीत को समस्त ललित कलाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। आर0 सत्यनारायण ने अपने निबन्ध 'गणपति और कर्णाटक म्यूजिक' में स्पष्ट रूप से कहा है कि संगीत की परिभाषिक शब्दावलि और ग्रामो पर योग और तन्त्र का विशेष प्रभाव पड़ा है। उनके अनुसार का जन्मस्थान 'मूलाधारचक्र' है जिसके संचालक 'गणपति' है क्योंकि ब्रह्मवैवर्तपुराण में 'ग' विवेक को और 'ण' मोक्ष को बताता है। इसी प्रकार 'अथर्वशीर्षोपनिषद्' में भी 'ग' ब्रह्म का अथवा 'मन' का और 'ण' ध्वनि का द्योतक है। इस प्रकार इस कथन में भी योग प्रभाव प्रलक्षित होता है।

निष्कर्ष–

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि योगदर्शन में शरीर और उसके विज्ञान को विशेष रूप से मान्यता दी गई है। सम्पूर्ण आठवीं शताब्दी तक देश में व्याप्त योग साधना के सहज सत्यों को संगीत–मनीषियों ने भी अपनाया।

इसीलिए आठवीं शताब्दी के बाद लिखे गए 'संगीतरत्नाकर' नाम महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ में नादनिरूपण से भी पूर्व 'पिण्डोत्पत्ति' प्रकरण में कारण सहित सम्पूर्ण 'पिण्ड' की उत्पत्ति का क्रमिक विकास दिया गया है। तत्पश्चात् योगशास्त्र में वर्णित देह में चेतना के प्रथम छह मुख्य केन्द्रों का ज्यों का त्यों वर्णन करने के अनन्तर संगीतपयोगी अन्य चार केन्द्रों 'ललनादि' की भी चर्चा करते हुए कहा है कि इन चक्रों का अवधान करने पर संगीत के क्षेत्र में विलक्षण शक्ति एवं संगीतोपयोगी विभिन्न सिद्धियां भी प्राप्त होती है। अस्तु योग दर्शन में स्वीकृत केन्द्रों का उपयोग तथा विनियोग संगीत शास्त्र में भी उपलब्ध है जो योग के प्रभाव को इंगित करता है। योग के देशव्यापी व्यवहारिक सशक्त प्रभाव का स्वरूप और योगदर्शन के नाद ब्रह्मवाद का पोषण तथा विकास संगीत के शास्त्रीय ग्रन्थों में अनायास संक्रान्त हो गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. शर्मा श्री राम अचार्य– यो0त0उ0 –16 ,108 उपनिषद् ब्रह्मविद्या खण्ड, युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, मथुरा।
2. मुसलगाँवकर.विमला 1995–भारतीय संगीत शास्त्र का दर्शनपरक अनुशीलन, पृ0–20।
3. शरंगदेव – संगीत रत्ना0 2/2/164
4. मुसलगाँवकर.विमला 1995–भारतीय संगीत शास्त्र का दर्शनपरक अनुशीलन, पृ0–20।
5. भरत –ना0 शा0 2 अभि0 भा0 – आत्मोवज्ञान पृ0–68–80।
6. मुसलगाँवकर.विमला 1995 –भारतीय संगीत"ाास्त्र का दर्शनपरक अनुशीलन, पृ0–20
7. शर्मा श्री राम अचार्य – ना0 बि0 उ0 – 29–30, 108 उपनिषद् ज्ञान खण्ड, युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, मथुरा।
8. शर्मा श्री राम अचार्य – ना0 बि0 उ0 46, 108 उपनिषद् ज्ञान खण्ड, युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, मथुरा।
9. शरंगदेव – सं0 रत्ना0 1/3/47
10. शरंगदेव – संगीत रत्नाकर 6/56।
11. भरत –ना0 शा0–34/30–31
12. मतंग –वृहदे0 नादोत्पत्तिप्रकरण–20
13. शरंगदेव –संगीत रत्नाकर – 1/1/14
14. शरंगदेव –संगीत रत्नाकर – 1/1/21
15. शरंगदेव – संगीत रत्नाकर 1/1/53–55
16. Journal of Indian Musical Society Vol. V.No-2, 1974